श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

रुद्र गीत(अर्थ)

मैत्रेय उवाच

विजिताश्वोऽधिराजाऽऽसीत्-पृथुपुत्रः(फ्) पृथुश्रवाः।

यवीयोभ्योऽददात्काष्ठा, भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः॥ (1)

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! महाराज पृथुके बाद उनके पुत्र परम यशस्वी विजिताश्व राजा हुए। उनका अपने छोटे भाइयोंपर बड़ा स्नेह था, इसलिये उन्होंने चारोंको एक-एक दिशाका अधिकार सौंप दिया ॥ १ ॥

हर्यक्षायादिशत्प्राचीं(न्), धूम्रकेशाय दक्षिणाम्।

प्रतीचीं(वँ) वृकसं(ञ्)ज्ञाय, तुर्यां(न्) द्रविणसे विभुः॥ (2)

राजा विजिताश्वने हर्यक्षको पूर्व, धूम्रकेशको दक्षिण, वृकको पश्चिम और द्रविणको उत्तर दिशाका राज्य दिया ॥ २ ॥

अन्तर्धानगतिं(म्) शक्रात्-लब्ध्वान्तर्धानसं(ञ्)ज्ञितः।

अपत्यत्रयमाधत्त, शिखण्डिन्यां(म्) सुसम्मतम् ॥ (3)

उन्होंने इन्द्रसे अन्तर्धान होनेकी शक्ति प्राप्त की थी, इसलिये उन्हें 'अन्तर्धान' भी कहते थे। उनकी पत्नीका नाम शिखण्डिनी था। उससे उनके तीन सुपुत्र हुए ॥ ३ ॥

पावकः(फ्) पवमानश्च, शुचिरित्यग्नयः(फ्) पुरा।

वसिष्ठशापादुत्पन्नाः(फ्), पुनर्योगगतिं(ङ्) गताः॥ (4)

उनके नाम पावक, पवमान और शुचि थे। पूर्वकालमें वसिष्ठजीका शाप होनेसे उपर्युक्त नामके अग्नियोंने ही उनके रूपमें जन्म लिया था।आगे चलकर योगमार्गसे ये फिर अग्निरूप हो गये॥ ४ ॥

अन्तर्धानो नभस्वत्यां(म्), हविर्धानमविन्दत।

य इन्द्रमश्वहर्तारं(वँ), विद्वानपि न जघ्निवान्॥ (5)

अन्तर्धानके नभस्वती नामकी पत्नीसे एक और पुत्र-रत्न हविर्धान प्राप्त हुआ। महाराज अन्तर्धान बड़े उदार पुरुष थे। जिस समय इन्द्र उनके पिताके अश्वमेध-यज्ञका घोड़ा हरकर ले गये थे, उन्होंने पता लग जानेपर भी उनका वध नहीं किया था ॥ ५ ॥

राज्ञां(वँ) वृत्तिं(ङ्) करादान- दण्डशुल्कादिदारुणाम्।
मन्यमानो दीर्घसत्र- व्याजेन विससर्ज ह॥ (6)

राजा अन्तर्धानने कर लेना, दण्ड देना, जुरमाना वसूल करना आदि कर्तव्योंको बहुत कठोर एवं दूसरोंके लिये कष्टदायक समझकर एक दीर्घकालीन यज्ञमें दीक्षित होनेके बहाने अपना राज-काज छोड़ दिया ॥ ६ ॥

तत्रापि हं(म्)सं(म्) पुरुषं(म्), परमात्मानमात्मदृक्।
यजं(म्)स्तल्लोकतामाप, कुशलेन समाधिना॥ (7)

यज्ञकार्यमें लगे रहनेपर भी उन आत्मज्ञानी राजाने भक्तभयभञ्जन पूर्णतम परमात्माकी आराधना करके सुदृढ़ समाधिके द्वारा भगवान्‌के दिव्य लोकको प्राप्त किया ॥ ७ ॥

हविर्धानाद्धविर्धानी, विदुरासूत षट् सुतान्।
बर्हिषदं(ङ्) गयं(म्) शुक्लं(ङ्),कृष्णं(म्) सत्यं(ञ्) जितव्रतम्॥ (8)

विदुरजी ! हविर्धानकी पत्नी हविर्धानीने बर्हिषद्, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत नामके छः पुत्र पैदा किये ॥ ८ ॥

बर्हिषत् सुमहाभागो, हाविर्धानि:(फ्) प्रजापति:।
क्रियाकाण्डेषु निष्णातो, योगेषु च कुरूद्वह॥ (9)

कुरुश्रेष्ठ विदुरजी ! इनमें हविर्धानके पुत्र महाभाग बर्हिषद् यज्ञादि कर्मकाण्ड और योगाभ्यासमें कुशल थे। उन्होंने प्रजापतिका पद प्राप्त किया ॥ ९ ॥

यस्येदं(न्) देवयजन-मनु यज्ञं(वँ) वितन्वत:।
प्राचीनाग्रै:(ख्) कुशैरासी-दास्तृतं(वँ) वसुधातलम् ॥ (10)

उन्होंने एक स्थानके बाद दूसरे स्थानमें लगातार इतने यज्ञ किये कि यह सारी भूमि पूर्वकी ओर अग्रभाग करके फैलाये हुए कुशोंसे पट गयी थी। (इसीसे आगे चलकर वे 'प्राचीनबर्हि' नामसे विख्यात हुए) ॥ १० ॥

सामुद्रीं(न्) देवदेवोक्ता-मुपयेमे शतद्रुतिम्।
यां(वँ) वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गीं(ङ्), किशोरीं(म्) सुष्ठ्वलङ्कृताम्।

परिक्रमन्तीमुद्वाहे, चकमेऽग्निः(श्) शुकीमिव॥ (11)

राजा प्राचीनबर्हिने ब्रह्माजीके कहनेसे समुद्रकी कन्या शतद्रुतिसे विवाह किया था। सर्वाङ्गसुन्दरी किशोरी शतद्रुति सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सजधजकर विवाह-मण्डपमें जब भाँवर देनेके लिये घूमने लगी, तब स्वयं अग्निदेव भी मोहित होकर उसे वैसे ही चाहने लगे जैसे शुकीको चाहा था ॥ ११ ॥

विबुधासुरगन्धर्व-मुनिसिद्धनरोरगाः।

विजिताः(स्) सूर्यया दिक्षु, क्वणयन्त्यैव नूपुरैः॥ (12)

नवविवाहिता शतद्रुतिने अपने नूपुरोंकी झनकारसे ही दिशा-विदिशाओंके देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और नाग—सभीको वशमें कर लिया था ॥ १२ ॥

प्राचीनबर्हिषः(फ्) पुत्राः(श्), शतद्रुत्यां(न्) दशाभवन्।

तुल्यनामव्रताः(स्) सर्वे, धर्मस्नाताः(फ्) प्रचेतसः॥ (13)

शतद्रुतिके गर्भसे प्राचीनबर्हिके प्रचेता नामके दस पुत्र हुए। वे सब बड़े ही धर्मज्ञ तथा एक-से नाम और आचरणवाले थे ॥ १३ ॥

पित्राऽऽदिष्टाः(फ्) प्रजासर्गे, तपसेऽर्णवमाविशन् ।

दशवर्षसहस्राणि, तपसाऽऽर्चं(म्)स्तपस्पतिम्॥ (14)

जब पिताने उन्हें सन्तान उत्पन्न करनेका आदेश दिया, तब उन सबने तपस्या करनेके लिये समुद्रमें प्रवेश किया। वहाँ दस हजार वर्षतक तपस्या करते हुए उन्होंने तपका फल देनेवाले श्रीहरिकी आराधना की ॥ १४ ॥

यदुक्तं(म्) पथि दृष्टेन, गिरिशेन प्रसीदता।

तद्ध्यायन्तो जपन्तश्च, पूजयन्तश्च सं(यँ)यताः॥ (15)

घरसे तपस्या करनेके लिये जाते समय मार्गमें श्रीमहादेवजीने उन्हें दर्शन देकर कृपापूर्वक जिस तत्त्वका उपदेश दिया था, उसीका वे एकाग्रतापूर्वक ध्यान, जप और पूजन करते रहे ॥ १५ ॥

विदुर उवाच

प्रचेतसां(ङ्) गिरित्रेण, यथाऽऽसीत्पथि सङ्गमः।

यदुताह हरः(फ्) प्रीतस्- तन्नो ब्रह्मन् वदार्थवत् ॥ (16)

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन् ! मार्गमें प्रचेताओंका श्रीमहादेवजीके साथ किस प्रकार समागम हुआ और उनपर प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने उन्हें क्या उपदेश किया, वह सारयुक्त बात आप कृपा करके मुझसे कहिये ॥ १६ ॥

सङ्गमः(ख्) खलु विप्रर्षे, शिवेनेह शरीरिणाम्।

दुर्लभो मुनयो दध्यु- रसङ्गाद्यमभीप्सितम्॥ (17)

ब्रह्मर्षे ! शिवजीके साथ समागम होना तो देहधारियोंके लिये बहुत कठिन है। औरोंकी तो बात ही क्या है—मुनिजन भी सब प्रकारकी आसक्ति छोडक़र उन्हें पानेके लिये उनका निरन्तर ध्यान ही किया करते हैं, किन्तु सहजमें पाते नहीं ॥ १७ ॥

आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य, लोककल्पस्य राधसे।

शक्त्या युक्तो विचरति, घोरया भगवान् भवः॥ (18)

यद्यपि भगवान् शङ्कर आत्माराम हैं, उन्हें अपने लिये न कुछ करना है, न पाना, तो भी इस लोकसृष्टिकी रक्षाके लिये वे अपनी घोररूपा शक्ति (शिवा) के साथ सर्वत्र विचरते रहते हैं॥ १८ ॥

मैत्रेय उवाच

प्रचेतसः(फ्) पितुर्वाक्यं(म्), शिरसाऽऽदाय साधवः।

दिशं(म्) प्रतीचीं(म्) प्रययुस्- तपस्यादृतचेतसः॥ (19)

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! साधुस्वभाव प्रचेतागण पिताकी आज्ञा शिरोधार्य कर तपस्यामें चित्त लगा पश्चिमकी ओर चल दिये ॥ १९ ॥

समुद्रमुप विस्तीर्ण- मपश्यन् सुमहत्सरः।

महन्मन इव स्वच्छं(म्), प्रसन्नसलिलाशयम्॥ (20)

चलते-चलते उन्होंने समुद्रके समान विशाल एक सरोवर देखा। वह महापुरुषोंके चित्तके समान बड़ा ही स्वच्छ था तथा उसमें रहनेवाले मत्स्यादि जलजीव भी प्रसन्न जान पड़ते थे ॥ २० ॥

नीलरक्तोत्पलाम्भोज-कह्लारेन्दीवराकरम्।

हं(म्)ससारसचक्राह्व-कारण्डवनिकूजितम्॥ (21)

उसमें नीलकमल, लालकमल, रातमें, दिनमें और सायंकालमें खिलनेवाले कमल तथा इन्दीवर आदि अन्य कई प्रकारके कमल सुशोभित थे। उसके तटोंपर हंस, सारस, चकवा और कारण्डव आदि जलपक्षी चहक रहे थे ॥ २१ ॥

मत्तभ्रमरसौस्वर्य- हृष्टरोमलताङ्घ्रिपम्।

पद्मकोशरजो दिक्षु, विक्षिपत्पवनोत्सवम्॥ (22)

उसके चारों ओर तरह-तरहके वृक्ष और लताएँ थीं, उनपर मतवाले भौंरे गूँज रहे थे। उनकी मधुर ध्वनिसे हर्षित होकर मानो उन्हें रोमाञ्च हो रहा था। कमलकोशके परागपुञ्ज वायुके झकोरोंसे चारों ओर उड़ रहे थे मानो वहाँ कोई उत्सव हो रहा है ॥ २२ ॥

तत्र गान्धर्वमाकर्ण्य, दिव्यमार्गमनोहरम्।

विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते, मृदं(ङ्)गपणवाद्यनु॥ (23)

वहाँ मृदङ्ग, पणव आदि बाजोंके साथ अनेकों दिव्य राग- रागिनियोंके क्रमसे गायनकी मधुर ध्वनि सुनकर उन राजकुमारोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २३ ॥

तर्ह्येव सरसस्तस्मान्-निष्क्रामन्तं(म्) सहानुगम्।

उपगीयमानममर-प्रवरं(वँ) विबुधानुगैः॥ (24)

तप्तहेमनिकायाभं(म्), शितिकण्ठं(न्) त्रिलोचनम्।

प्रसादसुमुखं(वँ) वीक्ष्य, प्रणेमुर्जातकौतुकाः॥ (25)

इतनेमें ही उन्होंने देखा कि देवाधिदेव भगवान् शङ्कर अपने अनुचरोंके सहित उस सरोवरसे बाहर आ रहे हैं। उनका शरीर तपी हुई सुवर्णराशिके समान कान्तिमान् है, कण्ठ नीलवर्ण है तथा तीन विशाल नेत्र हैं। वे अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उद्यत हैं। अनेकों गन्धर्व उनका सुयश गा रहे हैं। उनका सहसा दर्शन पाकर प्रचेताओंको बड़ा कुतूहल हुआ और उन्होंने शङ्करजीके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ २४-२५ ॥

स तान् प्रपन्नार्तिहरो, भगवान्धर्मवत्सलः।

धर्मज्ञान् शीलसम्पन्नान्, प्रीतः(फ्) प्रीतानुवाच ह॥ (26)

तब शरणागतभयहारी धर्मवत्सल भगवान् शङ्करने अपने दर्शनसे प्रसन्न हुए उन धर्मज्ञ और शीलसम्पन्न राजकुमारोंसे प्रसन्न होकर कहा— ॥ २६ ॥

श्रीरुद्र उवाच

यूयं(वँ) वेदिषदः(फ्) पुत्रा, विदितं(वँ) वश्चिकीर्षितम्।

अनुग्रहाय भद्रं(वँ) व, एवं(म्) मे दर्शनं(ङ्) कृतम्॥ (27)

श्रीमहादेवजी बोले—तुमलोग राजा प्राचीनबर्हिके पुत्र हो, तुम्हारा कल्याण हो। तुम जो कुछ करना चाहते हो, वह भी मुझे मालूम है। इस समय तुमलोगोंपर कृपा करनेके लिये ही मैंने तुम्हें इस प्रकार दर्शन दिया है ॥ २७ ॥

यः(फ्) परं(म्) रं(म्)हसः(स्) साक्षात्-त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात्।

भगवन्तं(वँ) वासुदेवं(म्), प्रपन्नः(स्) स प्रियो हि मे॥ (28)

जो व्यक्ति अव्यक्त प्रकृति तथा जीवसंज्ञक पुरुष—इन दोनोंके नियामक भगवान् वासुदेवकी साक्षात् शरण लेता है, वह मुझे परम प्रिय है ॥ २८ ॥

स्वधर्मनिष्ठः(श्) शतजन्मभिः(फ्) पुमान्,

विरिञ्चतामेति ततः(फ्) परं(म्) हि माम्।

अव्याकृतं(म्) भागवतोऽथ वैष्णवं(म्),

पदं(यँ) यथाहं(वँ) विबुधाः(ख्) कलात्यये॥ (29)

अपने वर्णाश्रमधर्मका भलीभाँति पालन करनेवाला पुरुष सौ जन्मके बाद ब्रह्माके पदको प्राप्त होता है। और इससे भी अधिक पुण्य होनेपर वह मुझे प्राप्त होता है। परन्तु जो भगवान्‌का अनन्य भक्त है, वह तो मृत्युके बाद ही सीधे भगवान् विष्णुके उस सर्वप्रपञ्चातीत परमपदको प्राप्त हो जाता है, जिसे रुद्ररूपमें स्थित मैं तथा अन्य आधिकारिक देवता अपने-अपने अधिकारकी समाप्तिके बाद प्राप्त करेंगे ॥ २९ ॥

अथ भागवता यूयं(म्), प्रियाः(स्) स्थ भगवान् यथा।

न मद्भागवतानां(ञ्) च, प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित्॥(30)

तुमलोग भगवद्भक्त होनेके नाते मुझे भगवान्‌के समान ही प्यारे हो। इसी प्रकार भगवान्‌के भक्तोंको भी मुझसे बढ़कर और कोई कभी प्रिय नहीं होता ॥ ३० ॥

इदं(वँ) विविक्तं(ञ्) जप्तव्यं(म्), पवित्रं(म्) मं(ङ्)गलं(म्) परम्।

निः(श्)श्रेयसकरं(ञ्) चापि, श्रूयतां(न्) तद्वदामि वः॥(31)

अब मैं तुम्हें एक बड़ा ही पवित्र, मङ्गलमय और कल्याणकारी स्तोत्र सुनाता हूँ। इसका तुमलोग शुद्धभावसे जप करना ॥ ३१ ॥

मैत्रेय उवाच

इत्यनुक्रोशहृदयो, भगवानाह तान् शिवः।

बद्धाञ्जलीन् राजपुत्रान्-नारायणपरो वचः॥(32)

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—तब नारायणपरायण करुणार्द्रहृदय भगवान् शिवने अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए उन राजपुत्रोंको यह स्तोत्र सुनाया ॥ ३२ ॥

श्रीरुद्र उवाच

जितं(न्) त आत्मविद्धुर्य-स्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे।

भवता राधसा राद्धं(म्), सर्वस्मा आत्मने नमः॥(33)

भगवान् रुद्र स्तुति करने लगे—भगवन् ! आपका उत्कर्ष उक्चोटिके आत्मज्ञानियोंके कल्याणके लिये—निजानन्द लाभके लिये है, उससे मेरा भी कल्याण हो। आप सर्वदा अपने निरतिशय परमानन्द स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं, ऐसे सर्वात्मक आत्मस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

नमः(फ्) पङ्कजनाभाय, भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने।

वासुदेवाय शान्ताय, कूटस्थाय स्वरोचिषे॥(34)

आप पद्मनाभ (समस्त लोकोंके आदि कारण) हैं; भूतसूक्ष्म (तन्मात्र) और इन्द्रियोंके नियन्ता, शान्त, एकरस और स्वयंप्रकाश वासुदेव (चित्तके अधिष्ठाता) भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥

सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय, दुरन्तायान्तकाय च।

नमो विश्वप्रबोधाय, प्रद्युम्नायान्तरात्मने॥ (35)

आप ही सूक्ष्म (अव्यक्त), अनन्त और मुखाग्निके द्वारा सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेवाले अहंकारके अधिष्ठाता सङ्कर्षण तथा जगत्के प्रकृष्ट ज्ञानके उद्गमस्थान बुद्धिके अधिष्ठाता प्रद्युम्न हैं; आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥

नमो नमोऽनिरुद्धाय, हृषीकेशेन्द्रियात्मने।

नमः(फ्) परमहं(म्)साय, पूर्णाय निभृतात्मने॥(36)

आप ही इन्द्रियोंके स्वामी मनस्तत्त्वके अधिष्ठाता भगवान् अनिरुद्ध हैं; आपको बार-बार नमस्कार है। आप अपने तेजसे जगत्को व्याप्त करनेवाले सूर्यदेव हैं, पूर्ण होनेके कारण आपमें वृद्धि और क्षय नहीं होता; आपको नमस्कार है ॥ ३६ ॥

स्वर्गापवर्गद्वाराय, नित्यं(म्) शुचिषदे नमः।

नमो हिरण्यवीर्याय, चातुर्होत्राय तन्तवे॥(37)

आप स्वर्ग और मोक्षके द्वार तथा निरन्तर पवित्र हृदयमें रहनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही सुवर्णरूप वीर्यसे युक्त और चातुर्होत्र कर्मके साधन तथा विस्तार करनेवाले अग्निदेव हैं; आपको नमस्कार है ॥ ३७ ॥

नम ऊर्ज इषे त्रय्याः(फ्), पतये यज्ञरेतसे।

तृप्तिदाय च जीवानां(न्), नमः(स्) सर्वरसात्मने॥(38)

आप पितर और देवताओंके पोषक सोम हैं तथा तीनों वेदोंके अधिष्ठाता हैं; हम आपको नमस्कार करते हैं, आप ही समस्त प्राणियोंको तृप्त करनेवाले सर्वरस (जल) रूप हैं; आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥

सर्वसत्त्वात्मदेहाय, विशेषाय स्थवीयसे।

नमस्त्रैलोक्यपालाय, सहओजोबलाय च॥(39)

आप समस्त प्राणियोंके देह, पृथ्वी और विराट्स्वरूप हैं तथा त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले मानसिक, ऐन्द्रियिक और शारीरिक शक्तिस्वरूप वायु (प्राण) हैं; आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥

अर्थलिं(ङ्)गाय नभसे, नमोऽन्तर्बहिरात्मने।

नमः(फ्) पुण्याय लोकाय, अमुष्मै भूरिवर्चसे॥(40)

आप ही अपने गुण शब्दके द्वारा—समस्त पदार्थोंका ज्ञान करानेवाले तथा बाहर-भीतरका भेद करनेवाले आकाश हैं तथा आप ही महान् पुण्योंसे प्राप्त होनेवाले परम तेजोमय स्वर्ग-वैकुण्ठादि लोक हैं; आपको पुनः- पुनः नमस्कार है ॥ ४० ॥

प्रवृत्ताय निवृत्ताय, पितृदेवाय कर्मणे।

नमोऽधर्मविपाकाय, मृत्यवे दुःखदाय च॥(41)

आप पितृलोककी प्राप्ति करानेवाले प्रवृत्ति-कर्मरूप और देवलोककी प्राप्तिके साधन निवृत्तिकर्मरूप हैं तथा आप ही अधर्मके फलरूप दुःखदायक मृत्यु हैं; आपको नमस्कार है॥ ४१ ॥

नमस्त आशिषामीश, मनवे कारणात्मने।

नमो धर्माय बृहते, कृष्णायाकुण्ठमेधसे।

पुरुषाय पुराणाय, सां(ङ्)ख्ययोगेश्वराय च॥ (42)

नाथ ! आप ही पुराणपुरुष तथा सांख्य और योगके अधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं; आप सब प्रकारकी कामनाओंकी पूर्तिके कारण, साक्षात् मन्त्रमूर्ति और महान् धर्मस्वरूप हैं; आपकी ज्ञानशक्ति किसी भी प्रकार कुण्ठित होनेवाली नहीं है; आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ४२ ॥

शक्तित्रयसमेताय, मीढुषेऽहं(ङ्)कृतात्मने।

चेतआकूतिरूपाय, नमो वाचोविभूतये॥(43)

आप ही कर्ता, करण और कर्म—तीनों शक्तियोंके एकमात्र आश्रय हैं; आप ही अहंकारके अधिष्ठाता रुद्र हैं; आप ही ज्ञान और क्रियास्वरूप हैं तथा आपसे ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—चार प्रकारकी वाणीकी अभिव्यक्ति होती है; आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥

दर्शनं(न्) नो दिदृक्षूणां(न्), देहि भागवतार्चितम्।

रूपं(म्) प्रियतमं(म्) स्वानां(म्), सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम्॥(44)

प्रभो ! हमें आपके दर्शनोंकी अभिलाषा है; अतः आपके भक्तजन जिसका पूजन करते हैं और जो आपके निजजनोंको अत्यन्त प्रिय है, अपने उस अनूप रूपकी आप हमें झाँकी कराइये। आपका वह रूप अपने गुणोंसे समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाला है ॥ ४४ ॥

स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं(म्), सर्वसौन्दर्यसङ्ग्रहम्।

चार्वायतचतुर्बाहुं(म्), सुजातरुचिराननम्॥ (45)

पद्मकोशपलाशाक्षं(म्), सुन्दरभ्रु सुनासिकम्।

सुद्विजं(म्) सुकपोलास्यं(म्), समकर्णविभूषणम्॥(46)

वह वर्षाकालीन मेघके समान स्निग्ध श्याम और सम्पूर्ण सौन्दर्योंका सार-सर्वस्व है। सुन्दर चार विशाल भुजाएँ, महामनोहर मुखारविन्द, कमलदलके समान नेत्र, सुन्दर भौंहें, सुघड़ नासिका,

मनमोहिनी दन्तपंक्ति, अमोल- कपोलयुक्त मनोहर मुखमण्डल और शोभाशाली समान कर्णयुगल हैं ॥ ४५-४६ ॥

प्रीतिप्रहसितापां(ङ्)ग-मलकैरुपशोभितम्।

लसत्पङ्कजकिं(ञ्)जल्क-दुकूलं(म्) मृष्टकुण्डलम्॥(47)

स्फुरत्किरीटवलय-हारनूपुरमेखलम्।

शङ्खचक्रगदापद्म-मालामण्युत्तमर्द्धिमत्॥(48)

प्रीतिपूर्ण उन्मुक्त हास्य, तिरछी चितवन, काली-काली घुँघराली अलकें, कमलकुसुमकी केसरके समान फहराता हुआ पीताम्बर, झिलमिलाते हुए कुण्डल, चमचमाते हुए मुकुट, कङ्कण, हार, नूपुर और मेखला आदि विचित्र आभूषण तथा शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और कौस्तुभमणिके कारण उसकी अपूर्व शोभा है ॥ ४७-४८ ॥

सिं(म्)हस्कन्धत्विषो बिभ्रत्-सौभगग्रीवकौस्तुभम्।

श्रियानपायिन्या क्षिप्त-निकषाश्मोरसोल्लसत्॥(49)

उसके सिंहके समान स्थूल कंधे हैं—जिनपर हार, केयूर एवं कुण्डलादिकी कान्ति झिलमिलाती रहती है—तथा कौस्तुभमणिकी कान्तिसे सुशोभित मनोहर ग्रीवा है। उसका श्यामल वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नके रूपमें लक्ष्मीजीका नित्य निवास होनेके कारण कसौटीकी शोभाको भी मात करता है ॥ ४९ ॥

पूररेचकसं(वँ)विग्न-वलिवल्गुदलोदरम्।

प्रतिसं(ङ्)क्रामयद्विश्वं(न्), नाभ्याऽऽवर्तगभीरया॥(50)

उसका त्रिवलीसे सुशोभित, पीपलके पत्तेके समान सुडौल उदर श्वासके आने-जानेसे हिलता हुआ बड़ा ही मनोहर जान पड़ता है। उसमें जो भँवरके समान चक्करदार नाभि है, वह इतनी गहरी है कि उससे उत्पन्न हुआ यह विश्व मानो फिर उसीमें लीन होना चाहता है ॥ ५० ॥

श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णुर्-दुकूलस्वर्णमेखलम्।

समचार्वङ्घ्रिजङ्घोरु-निम्नजानुसुदर्शनम्॥(51)

श्यामवर्ण कटिभागमें पीताम्बर और सुवर्णकी मेखला शोभायमान है। समान और सुन्दर चरण, ङ्घपडली, जाँघ और घुटनोंके कारण आपका दिव्य विग्रह बड़ा ही सुघड़ जान पड़ता है ॥ ५१ ॥

पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा,

नखद्युभिर्नोऽन्तरघं(वँ) विधुन्वता।

प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं(म्),

पदं(ङ्) गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम्॥(52)

आपके चरणकमलोंकी शोभा शरद् ऋतुके कमल-दलकी कान्तिका भी तिरस्कार करती है। उनके नखोंसे जो प्रकाश निकलता है, वह जीवोंके हृदयान्धकारको तत्काल नष्ट कर देता है। हमें आप कृपा करके भक्तोंके भयहारी एवं आश्रयस्वरूप उसी रूपका दर्शन कराइये। जगद्गुरो ! हम अज्ञानावृत प्राणियोंको अपनी प्राप्तिका मार्ग बतलानेवाले आप ही हमारे गुरु हैं ॥ ५२ ॥

एतद्रूपमनुध्येय-मात्मशुद्धिमभीप्सताम्।

यद्भक्तियोगोऽभयदः(स्), स्वधर्ममनुतिष्ठताम्॥(53)

प्रभो ! चित्तशुद्धिकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको आपके इस रूपका निरन्तर ध्यान करना चाहिये; इसकी भक्ति ही स्वधर्मका पालन करनेवाले पुरुषको अभय करनेवाली है ॥ ५३ ॥

भवान् भक्तिमता लभ्यो, दुर्लभः(स्) सर्वदेहिनाम्।

स्वाराज्यस्याप्यभिमत, एकान्तेनात्मविद्गतिः॥(54)

स्वर्गका शासन करनेवाला इन्द्र भी आपको ही पाना चाहता है तथा विशुद्ध आत्मज्ञानियोंकी गति भी आप ही हैं। इस प्रकार आप सभी देहधारियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं; केवल भक्तिमान् पुरुष ही आपको पा सकते हैं ॥ ५४ ॥

तं(न्) दुराराध्यमाराध्य, सतामपि दुरापया।

एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्-पादमूलं(वँ) विना बहिः॥(55)

सत्पुरुषोंके लिये भी दुर्लभ अनन्य भक्तिसे भगवान्को प्रसन्न करके, जिनकी प्रसन्नता किसी अन्य साधनासे दु:साध्य है, ऐसा कौन होगा जो उनके चरणतलके अतिरिक्त और कुछ चाहेगा ॥ ५५ ॥

यत्र निर्विष्टमरणं(ङ्), कृतान्तो नाभिमन्यते।

विश्वं(वँ) विध्वं(म्)सयन् वीर्य-शौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा॥(56)

जो काल अपने अदम्य उत्साह और पराक्रमसे फडक़ती हुए भौंहके इशारेसे सारे संसारका संहार कर डालता है, वह भी आपके चरणोंकी शरणमें गये हुए प्राणीपर अपना अधिकार नहीं मानता ॥ ५६ ॥

क्षणार्धेनापि तुलये, न स्वर्गं(न्) नापुनर्भवम्।

भगवत्सं(ङ्)गिसं(ङ्)गस्य, मर्त्यानां(ङ्) किमुताशिषः॥(57)

ऐसे भगवान्के प्रेमी भक्तोंका यदि आधे क्षणके लिये भी समागम हो जाय तो उसके सामने मैं स्वर्ग और मोक्षको कुछ नहीं समझता; फिर मत्र्यलोकके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है ॥ ५७ ॥

अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयो-

रन्तर्बहिः(स्)स्नानविधूतपाप्मनाम्।

भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां(म्),

स्यात्सं(ङ्)गमोऽनुग्रह एष नस्तव॥(58)

प्रभो ! आपके चरण सम्पूर्ण पापराशिको हर लेनेवाले हैं। हम तो केवल यही चाहते हैं कि जिन लोगोंने आपकी कीर्ति और तीर्थ (गङ्गाजी) में आन्तरिक और बाह्य स्नान करके मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकारके पापोंको धो डाला है तथा जो जीवोंके प्रति दया, राग-द्वेषरहित चित्त तथा सरलता आदि गुणोंसे युक्त हैं, उन आपके भक्तजनोंका सङ्ग हमें सदा प्राप्त होता रहे। यही हमपर आपकी बड़ी कृपा होगी ॥ ५८ ॥

न यस्य चित्तं(म्) बहिरर्थविभ्रमं(न्),

तमोगुहायां(ञ्) च विशुद्धमाविशत्।

यद्भक्तियोगानुगृहीतमं(ञ्)जसा,

मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम्॥(59)

जिस साधकका चित्त भक्तियोगसे अनुगृहीत एवं विशुद्ध होकर न तो बाह्य विषयोंमें भटकता है और न अज्ञान-गुहारूप प्रकृतिमें ही लीन होता है, वह अनायास ही आपके स्वरूपका दर्शन पा जाता है ॥ ५९ ॥

यत्रेदं(वँ) व्यज्यते विश्वं(वँ), विश्वस्मिन्नवभाति यत्।

तत् त्वं(म्) ब्रह्म परं(ञ्) ज्योति- राकाशमिव विस्तृतम्॥(60)

जिसमें यह सारा जगत् दिखायी देता है और जो स्वयं सम्पूर्ण जगत्में भास रहा है, वह आकाशके समान विस्तृत और परम प्रकाशमय ब्रह्मतत्त्व आप ही हैं ॥ ६० ॥

यो माययेदं(म्) पुरुरूपयासृजद्

बिभर्ति भूयः(ह्) क्षपयत्यविक्रियः।

यद्भेदबुद्धिः(स्) सदिवात्मदुः(स्)स्थया

तमात्मतन्त्रं(म्) भगवन् प्रतीमहि॥(61)

भगवन् ! आपकी माया अनेक प्रकारके रूप धारण करती है। इसीके द्वारा आप इस प्रकार जगत्की रचना, पालन और संहार करते हैं जैसे यह कोई सद्वस्तु हो। किन्तु इससे आपमें किसी प्रकारका विकार नहीं आता। मायाके कारण दूसरे लोगोंमें ही भेदबुद्धि उत्पन्न होती है, आप परमात्मापर वह अपना प्रभाव डालनेमें असमर्थ होती है। आपको तो हम परम स्वतन्त्र ही समझते हैं ॥ ६१ ॥

क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः(श्)

श्रद्धान्विताः(स्) साधु यजन्ति सिद्धये।

भूतेन्द्रियान्तः(ख्)करणोपलक्षितं(वँ)

वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः॥(62)

आपका स्वरूप पञ्चभूत, इन्द्रिय और अन्त:करणके प्रेरकरूपसे उपलक्षित होता है। जो कर्मयोगी पुरुष सिद्धि प्राप्त करनेके लिये तरह-तरहके कर्मोंद्वारा आपके इस सगुण साकार स्वरूपका श्रद्धापूर्वक भलीभाँति पूजन करते हैं, वे ही वेद और शास्त्रोंके सच्चे मर्मज्ञ हैं ॥ ६२ ॥

त्वमेक आद्यः(फ्) पुरुषः(स्) सुप्तशक्तिस् -

तया रजः(स्)सत्त्वतमो विभिद्यते।

महानहं(ङ्) खं(म्) मरुदग्निवार्धराः(स्)

सुरर्षयो भूतगणा इदं(यँ) यतः॥ (63)

प्रभो ! आप ही अद्वितीय आदिपुरुष हैं। सृष्टिके पूर्व आपकी मायाशक्ति सोयी रहती है। फिर उसीके द्वारा सत्त्व, रज और तमरूप गुणोंका भेद होता है और इसके बाद उन्हीं गुणोंसे महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, देवता, ऋषि और समस्त प्राणियोंसे युक्त इस जगत्की उत्पत्ति होती है ॥ ६३ ॥

सृष्टं(म्) स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्-

चतुर्विधं(म्) पुरमात्मां(म्)शकेन।

अथो विदुस्तं(म्) पुरुषं(म्) सन्तमन्तर्-

भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं(यँ) यः॥(64)

फिर आप अपनी ही मायाशक्तिसे रचे हुए इन जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्जभेदसे चार प्रकारके शरीरोंमें अंशरूपसे प्रवेश कर जाते हैं और जिस प्रकार मधुमक्खियाँ अपने ही उत्पन्न किये हुए मधुका आस्वादन करती हैं, उसी प्रकार वह आपका अंश उन शरीरोंमें रहकर इन्द्रियोंके द्वारा इन तुच्छ विषयोंको भोगता है। आपके उस अंशको ही पुरुष या जीव कहते हैं ॥ ६४ ॥

स एष लोकानतिचण्डवेगो

विकर्षसि त्वं(ङ्) खलु कालयानः।

भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो

घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः॥(65)

प्रभो ! आपका तत्त्वज्ञान प्रत्यक्षसे नहीं अनुमानसे होता है। प्रलयकाल उपस्थित होनेपर कालस्वरूप आप ही अपने प्रचण्ड एवं असह्य वेगसे पृथ्वी आदि भूतोंको अन्य भूतोंसे विचलित कराकर समस्त लोकोंका संहार कर देते हैं—जैसे वायु अपने असहनीय एवं प्रचण्ड झोंकोंसे मेघोंके द्वारा ही मेघोंको तितर-बितर करके नष्ट कर डालती है ॥ ६५ ॥

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया

प्रवृद्धलोभं(वँ) विषयेषु लालसम्।

त्वमप्रमत्तः(स्) सहसाभिपद्यसे

क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः॥(66)

भगवन् ! यह मोहग्रस्त जीव प्रमादवश हर समय इसी चिन्तामें रहता है कि 'अमुक कार्य करना है'। इसका लोभ बढ़ गया है और इसे विषयोंकी ही लालसा बनी रहती है। किन्तु आप सदा ही सजग रहते हैं; भूखसे जीभ लपलपाता हुआ सर्प जैसे चूहेको चट कर जाता है, उसी प्रकार आप अपने कालस्वरूपसे उसे सहसा लील जाते हैं ॥ ६६ ॥

कस्त्वत्पदाब्जं(वँ) विजहाति पण्डितो

यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः।

विशङ्क्यास्मद्गुरुरर्चति स्म यद्

विनोपपत्तिं(म्) मनवश्चतुर्दश॥(67)

आपकी अवहेलना करनेके कारण अपनी आयुको व्यर्थ माननेवाला ऐसा कौन विद्वान् होगा, जो आपके चरणकमलोंको बिसारेगा ? इनकी पूजा तो कालकी आशङ्कासे ही हमारे पिता ब्रह्माजी और स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओंने भी बिना कोई विचार किये केवल श्रद्धासे ही की थी॥ ६७ ॥

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन्, परमात्मन् विपश्चिताम्।

विश्वं(म्) रुद्रभयध्वस्त-मकुतश्चिद्भया गतिः॥(68)

ब्रह्मन् ! इस प्रकार सारा जगत् रुद्ररूप कालके भयसे व्याकुल है। अत: परमात्मन् ! इस तत्त्वको जाननेवाले हमलोगोंके तो इस समय आप ही सर्वथा भयशून्य आश्रय हैं ॥ ६८ ॥

इदं(ञ्) जपत भद्रं(वँ) वो, विशुद्धा नृपनन्दनाः।

स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो, भगवत्यर्पिताशयाः॥(69)

राजकुमारो ! तुमलोग विशुद्ध भावसे स्वधर्मका आचरण करते हुए भगवान्में चित्त लगाकर मेरे कहे हुए इस स्तोत्रका जप करते रहो; भगवान् तुम्हारा मङ्गल करेंगे ॥ ६९ ॥

तमेवात्मानमात्मस्थं(म्), सर्वभूतेष्ववस्थितम्।

पूजयध्वं(ङ्) गृणन्तश्च, ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम्॥(70)

तुमलोग अपने अन्त:करणमें स्थित उन सर्वभूतान्तर्यामी परमात्मा श्रीहरिका ही बार-बार स्तवन और चिन्तन करते हुए पूजन करो ॥ ७० ॥

योगादेशमुपासाद्य, धारयन्तो मुनिव्रताः।

समाहितधियः(स्) सर्व, एतदभ्यसतादृताः॥(71)

मैंने तुम्हें यह योगादेश नामका स्तोत्र सुनाया है। तुमलोग इसे मनसे धारणकर मुनिव्रतका आचरण करते हुए इसका एकाग्रतासे आदरपूर्वक अभ्यास करो ॥ ७१ ॥

इदमाह पुरास्माकं(म्), भगवान् विश्वसृक्पतिः।

भृग्वादीनामात्मजानां(म्), सिसृक्षुः(स्) सं(म्)सिसृक्षताम्॥(72)

यह स्तोत्र पूर्वकालमें जगद्विस्तारके इच्छुक प्रजापतियोंके पति भगवान् ब्रह्माजीने प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छावाले हम भृगु आदि अपने पुत्रोंको सुनाया था ॥ ७२ ॥

ते वयं(न्) नोदिताः(स्) सर्वे, प्रजासर्गे प्रजेश्वराः।

अनेन ध्वस्ततमसः(स्), सिसृक्ष्मो विविधाः(फ्) प्रजाः॥(73)

जब हम प्रजापतियोंको प्रजाका विस्तार करनेकी आज्ञा हुई, तब इसीके द्वारा हमने अपना अज्ञान निवृत्त करके अनेक प्रकारकी प्रजा उत्पन्न की थी ॥ ७३ ॥

अथेदं(न्) नित्यदा युक्तो, जपन्नवहितः(फ्) पुमान्।

अचिराच्छ्रेय आप्नोति, वासुदेवपरायणः॥(74)

अब भी जो भगवत्परायण पुरुष इसका एकाग्र चित्तसे नित्यप्रति जप करेगा, उसका शीघ्र ही कल्याण हो जायगा ॥ ७४ ॥

श्रेयसामिह सर्वेषां(ञ्), ज्ञानं(न्) निः(श्)श्रेयसं(म्) परम्।

सुखं(न्) तरति दुष्पारं(ञ्), ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम्॥(75)

इस लोकमें सब प्रकारके कल्याणसाधनोंमें मोक्षदायक ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है। ज्ञान-नौकापर चढ़ा हुआ पुरुष अनायास ही इस दुस्तर संसार- सागरको पार कर लेता है ॥ ७५ ॥

य इमं(म्) श्रद्धया युक्तो, मद्गीतं(म्) भगवत्स्तवम्।

अधीयानो दुराराध्यं(म्), हरिमाराधयत्यसौ॥(76)

यद्यपि भगवान्‌की आराधना बहुत कठिन है—किन्तु मेरे कहे हुए इस स्तोत्रका जो श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा, वह सुगमतासे ही उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेगा ॥ ७६ ॥

विन्दते पुरुषोऽमुष्मा-द्यद्यदिच्छत्यसत्वरम्।

मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्-छ्रेयसामेकवल्लभात्॥(77)

भगवान् ही सम्पूर्ण कल्याणसाधनोंके एकमात्र प्यारे—प्राप्तव्य हैं। अत: मेरे गाये हुए इस स्तोत्रके गानसे उन्हें प्रसन्न करके वह स्थिरचित्त होकर उनसे जो कुछ चाहेगा, प्राप्त कर लेगा ॥ ७७ ॥

इदं(यँ) यः(ख्) कल्य उत्थाय, प्राञ्जलिः(श्) श्रद्धयान्वितः।

शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो, मुच्यते कर्मबन्धनैः॥(78)

जो पुरुष उष:कालमें उठकर इसे श्रद्धापूर्वक हाथ जोडक़र सुनता या सुनाता है, वह सब प्रकारके कर्मबन्धनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ७८ ॥

गीतं(म्) मयेदं(न्) नरदेवनन्दनाः(फ्)

परस्य पुं(म्)सः(फ्) परमात्मनः(स्) स्तवम्।

जपन्त एकाग्रधियस्तपो महच्-

चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम्॥(79)

राजकुमारो ! मैंने तुम्हें जो यह परमपुरुष परमात्माका स्तोत्र सुनाया है, इसे एकाग्रचित्तसे जपते हुए तुम महान् तपस्या करो।तपस्या पूर्ण होनेपर इसीसे तुम्हें अभीष्ट फल प्राप्त हो जायगा॥ ७९॥

॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(ञ्)

चतुर्थस्कन्धे रुद्रगीतं(न्) नाम चतुर्विं(म्)शोऽध्यायः॥

YouTube Full video link

https://youtu.be/OIoljYValVI